लाइफ कन्विक्ट बंगाल @ खोका

बनाम

बीके श्रीवास्तव एवं अन्य

बेंच: पी. सदाशिवम, जगदीश सिंह खेहर

रिट याचिका (सीआरएल) संख्या 279/2004 में

अवमानना याचिका (सी) संख्या 363 /2011

13 फरवरी, 2013

लेखक: पी. सदाशिवम

दंड संहिता, 1860 -धारा 57 -आजीवन कारावास -अर्थ और -छूट का प्रभाव -हकदारी - धारित: एक बार एक व्यक्ति जब तक आजीवन कारावास की सजा नहीं दी जाती आजीवन कारावास को सक्षम प्राधिकारी द्वारा परिवर्तित किया जाता है, उसे जीवन भर कारावास भुगतना होगा धारा 57 सीआरपीसी किसी भी तरह से सज़ा को सीमित नहीं करता है आजीवन कारावास से लेकर 20 वर्ष की अवधि तक -अनुपस्थिति में सक्षम सरकार द्वारा छूट का आगामी आदेश या तो धारा 57 सीआरपीसी या सीआरपीसी के किसी अन्य प्रावधान के आधार पर आजीवन कारावास के दोषी को रिहा नहीं किया जा सकता - न तो धारा 57 सीआरपीसी और न ही डब्ल्यू बी

एक्ट की धारा 61 का स्पष्टीकरण। अधिनियम बताता है कि एक जीवन कारावास की सजा पूरी होने पर कैदी को रिहा करना पड़ता है 20 वर्ष की - एस के स्पष्टीकरण में 20 वर्ष का उल्लेख किया गया है। 61 का पश्चिम बंगाल. अधिनियम केवल माफी का आदेश देने के उद्देश्य से है - तथ्यों पर यदि राज्य सरकार संज्ञान ले रही है एफ ने विभिन्न पहलुओं पर पूरी अवधि की छूट देने से इनकार कर दिया तो याचिकाकर्ता उपरोक्त का लाभ नहीं उठा सकता स्पष्टीकरण और यहां तक की धारा 57 सीआरपीसी और प्री-मेच्योर की तलाश करें रिहाई -इसके अलावा संपूर्ण छूट का प्रश्न वाक्य या उसका कोई भाग विशेष क्षेत्र के अंतर्गत आता है उपयुक्त सरकारी और न ही 57 सीआरपीसी न ही कोई नियम या स्थानीय अधिनियम (हस्तगत मामले में डब्ल्यूबी अधिनियम) कर सकते हैं दी गई आजीवन कारावास की सजा के प्रभाव को कुंठित करना सीआरपीसी - पश्चिम बंगाल सुधारात्मक के तहत न्यायालय द्वारा सेवा अधिनियम, 1992 -धारा 2(सी) और 61, स्पष्टीकरण -सीआरपीसी, 1973 -धारा 432।

1. आजीवन कारावास की सजा से दण्डित याचिकाकर्ता द्वारा यह अवमानना याचिका प्रत्यर्थीगण के विरुद्व प्रस्तुत की गई है। पश्चिम बंगाल राज्य और उसके अधिकारियों द्वारा इस न्यायालय द्वारा पारीत आदेश दिनांकित 24.11.2010 की अवज्ञा करते हुए आदेशानुसार 8 सप्ताह की निर्धारित अवधि के भीतर उक्त की अनुपालना नहीं की गई तथा अधिनियम के अनुसार उसे रिहा करने में विफल रहे।

2. संक्षिप्त तथ्य:

उपरोक्त अवमानना याचिका से पहले, याचिकाकर्ता ने अपनी तत्काल रिहाई के लिए वर्ष 2004 में डब्ल्यूपी (सीआरएल) संख्या 279 के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट स्वंय की त्वरित रिहाई बाबत दायर की थी, जिसमें कहा गया था कि उसकी गणना के अनुसार, वह 22 वर्ष 2 माह 16 दिवस कारावास की कुल सजा अर्जित परिहार संम्मिलित करते हुए भुगत चुका है। उसके अनुसार, यहां तक की प्रत्यर्थीगण द्वारा अपने जवाबी हलफनामे में लिए गए आधार के अनुसार, 31.12.2004 तक वह परिहार ओर मुजरा सहित 20 वर्ष 1 माह व 17 दिनो की अवधि के लिए सजा भुगत चुका है। दूसरे शब्दों में, याचिकाकर्ता के अनुसार, वह पहले ही 20 साल की पूरी सजा परिहार सहित काट चुका है।

(बी) दिनांक 24.11.2010 के आदेश द्वारा, इस न्यायालय ने निम्नलिखित निर्देशों के साथ 2004 के डब्ल्यूपी (सीआरएल) संख्या 20 और 279 का निपटान किया:

हरियाणा राज्य और अन्य बनाम जगदीश 2010 (4) एससीसी 216 मे इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के आलोक मे तथा दोनों रिट याचिकाओं में मांगे गये अनुतोष पर विचार करते हुए, हम निम्नलिखित निर्देशों के अनुसार रिट याचिकाओं का निपटारा करते हैं:

पश्चिम बंगाल राज्य को निर्देशित किया जाता है कि वह दोनों रिट याचिकाकर्ताओं, आजीवन कारावास की सजा काट रहे दोषियों के दावे पर विचार करे और दोषसिद्वि की दिनांक पर लागु कानून/विधि केअ नुसार विचाराधिन परिहार के उद्वेश्य से सजा को समाप्त करने के लिए आगे कार्यवाही करे और उपरोक्त के संदर्भ में उचित आदेश पारित करे। उपरोक्त आदेश की प्रति प्राप्त होने की तारीख से 8 सप्ताह की अवधि के भीतर उचित आदेश पारित करे।

रिट याचिकाओं का निपटारा किया जाता है।

3. याचिकाकर्ता का दावा है कि इस न्यायालय के दिनांक 24.11.2010 के उक्त आदेश के बावजूद और पश्चिम बंगाल सुधार सेवा अधिनियम, 1992 पश्चिम बंगाल अधिनियम 32, 1992) के मद्देनजर (इसके बाद इसे "WB Act" से संबोदित किया गया है), प्रत्यर्थीगण ने उसे रिहा नहीं किया है जिसके कारण उसे उपरोक्त अवमानना याचिका दायर करने की आवश्यकता पड़ी।

4. इस न्यायालय द्वारा जारी नोटिस के पश्चात प्रत्यर्थी संख्या 1 पश्चिम बंगाल सरकार के न्यायिक विभाग के सचिव, श्री बी. के. श्रीवास्तव ने अपने पक्ष को उजागर करते हुए जवाबी हलफनामा दायर किया है। इसके साथ ही, डॉ. जी. डी. गौतम, प्रत्यर्थी संख्या 2, अतिरिक्त मुख्य सचिव, पश्चिम बंगाल सरकार, गृह विभाग और श्री बिप्लब दास -प्रत्यर्थी

संख्या 3, अधीक्षक, प्रेसीडेंसी सुधार गृह ने जवाबी हलफनामा दायर किया है। इन जवाबी हलफनामों में, राज्य सरकार ने इस बात पर प्रकाश डाला है कि हिरासत की अवधि, अन्य विवरण और पश्चिम बंगाल अधिनियम के प्रावधानों के तहत, विचार करते हुए उसने समय से पहले रिहाई के लिए याचिकाकर्ता की प्रार्थना को खारिज कर दिया, इसलिए, उनके अनुसार, इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 24.11.2010 का कोई उल्लंघन नहीं है और वर्तमान अवमानना याचिका को खारिज करने की प्रार्थना की।

5. हमने याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री बीएस मलिक और प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री अविजीत भट्टाचार्जी को सुना।

6. दोनों पक्षों के दावे का मुल्याकन करने के लिए, डब्ल्यूबी तहत कैदियों की रिहाई से संबंधित प्रासंगिक प्रावधानों का उल्लेख करना उपयोगी है। डब्ल्यूबी अधिनियम की धारा 2(सी) "सुधार गृह" को परिभाषित करती है जो इस प्रकार है:

"2 सुधार गृह" का अर्थ है राज्य सरकार के आदेशों के तहत स्थायी रूप से या अस्थायी रूप से व्यक्तियों को हिरासत में रखने के लिए उपयोग किया जाने वाला कोई भी स्थान, चाहे वह विचाराधीन केदी हो या प्रावधित किसी भी विधि के तहत कारावास के किसी भी आदेश के अनुसार निवारक निरोद्व या तत समय लागू अन्य विधि के तहत दोषि ठहराया गया किन्तु इसमें पुलिस की हिरासत के तहत किसी व्यक्ति को कैद करने की जगह

शामिल नहीं है; उक्त अधिनियम का अध्याय XVII परिहार, रिहाई और पैरोल से संबंधित है।

धारा 58 परिहार के बारे में बात करती है, आवेदको को विशेष परिहार देने से संबंधित है और धारा 61, जिससे हम संबंधित है, रिहाई के बारे में बात करती है। धारा 61 में 6 उपधारा एँ हैं और उसके बाद स्पष्टीकरण जोड़ा गया है।याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री बीएस मलिक ने धारा 61 के स्पष्टीकरण पर बहुत अधिक जोर दिया जो इस प्रकार है:

स्पष्टीकरण -इस धारा के तहत कारावास की कुल अवधि की गणना के प्रयोजन के लिए, आजीवन कारावास की अवधि को 20 वर्ष के कारावास की अवधि के बराबर माना जाएगा।"

7. स्पष्टीकरण पर भरोसा करते हुए और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि राज्य के अनुसार भी याचिकाकर्ता ने सुधार गृह (जेल) में 20 साल पार कर लिए हैं। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार इस न्यायालय के आदेश दिनांकित 24-11-2010 की अनुपालना में प्रत्यर्थीगण को याचिकाकर्ता को 20 वर्ष की अवधि पूरी होने पर रिहा कर देना चाहिए था। उपरोक्त दावे का प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री अविजित भट्टाचार्जी ने विरोध किया। उनके अनुसार, यह नहीं माना जा सकता कि आजीवन कारावास की अवधि 20 वर्ष के कारावास के बराबर है। उन्होंने

आगे बताया कि राज्य सरकार द्वारा पूरी अवधि के लिए परिहार बाबत आदेश के अभाव में याचिकाकर्ता को रिहा नहीं किया जा सकता है।

8. प्रारंभिक तौर पर याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री बीएस मलिक ने इस न्यायालय द्वारा 16.09.2011 को रिट याचिका (सीआरएल) संख्या 38/2011 उनवान हरपाल सिंह बनाम हरियाणा राज्य में दिये गये निर्णय का अवलम्बन लिय। संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत उक्त रिट याचिका, हरपाल सिंह नामक व्यक्ति द्वारा बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी करने और उसे उसकी सजा के 20 साल से अधिक समय तक जेल में अवैध हिरासत से तुरंत मुक्त करने के लिए दायर की गई थी। इस न्यायालय ने, अधीक्षक केंद्रीय जेल, अंबाला द्वारा जारी जेल हिरासत प्रमाणपत्र दिनांक 28.08.2011 को देखने के बाद पाया कि याचिकाकर्ता ने परिहार के साथ 20 साल से अधिक की कैद काट ली है, रिट याचिका को स्वीकार कर लिया और अधिकारियों को उसे जेल से तुरंत रिहा करने का निर्देश दिया। जब तक कि किसी अन्य मामले के संदर्भ में जेल में उसकी उपस्थिति आवश्यक न हो।

9. प्रासंगिक प्रावधानों अर्थात,भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 57 (संक्षेप में आई पी सी) डब्ल्यूबी अधिनियम की धारा 2 (सी) और 61 के अवलोकन के साथ-साथ इस पर इस न्यायालय के इस बिन्दु पर

विभिन्न निर्णय के अवलोकन के पश्चात, हम निम्नलिखित कारणों से याचिकाकर्ता के दावे को स्वीकार करने में असमर्थ हैं।

10. विभिन्न निर्णयों पर विचार करने से पहले, आईपीसी की धारा 57 को पुन: प्रस्तुत करना उपयोगी है जो इस प्रकार है:

"57. दण्डावधियों की भिन्नें - दण्डावधियों की भिन्नों की गणना करने में, आजीवन (कारावास) को 20 वर्ष के (कारावास) के तुल्य गिना जाएगा।"

11. सर्वप्रथम, गोपाल विनायक गोडसे बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, एआईआर 1961 एससी 600 में इस न्यायालय की संविधान पीठ के फैसले का उल्लेख करना उपयोगी है। उस मामले में, अनुच्छेद 32 के तहत एक रिट याचिका संविधान के अनुसार, बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति के आदेश के दायार की गई थीं जिसमें दावा किया गया था कि याचिकाकर्ता ने उचित रूप से अपनी सजा काट ली है और इसलिए, उसे तुरंत रिहा किया जाना चाहिए। अन्य प्रश्नों के अलावा, संविधान पीठ द्वारा विचार किया गया मुख्य प्रश्न यह था कि क्या कानून का कोई प्रावधान है जिसके तहत उचित सरकार द्वारा बिना किसी औपचारिक परिहार के आजीवन कारावास की सजा को एक निश्चित अवधि के लिए स्वचालित रूप से एक माना जा सकता है? संविधान पीठ ने उपरोक्त प्रश्न के उत्तर में कहा, "नहीं"। निम्नलिखित विर्मश और अंतिम निष्कर्ष प्रासंगिक हैं:

"5.....ऐसा कोई प्रावधान भारतीय दंड संहिता, दंड प्रक्रिया संहिता या जेल अधिनियम में नहीं पाया जाता है। हालाँकि भारत सरकार ने इस मामले में न्यायिक समिति के समक्ष कहा कि, भारतीय दंड संहिता की धारा 57 को आधार रखते हुए, 20 साल की कैद आजीवन कारावास की सजा के बराबर थी, न्यायिक समिति ने अपनी अन्तिम राय इस प्रशन पर नहीं दी। उक्त प्रकरण में न्यायिक समिति की राय प. 10 पर अंकित है।

यह मानते हुए कि सज़ा को बीस साल का माना जाना चाहिए, जो कि अच्छे आचरण के लिए परिहार के अधीन है, उसने अपने आवेदन के समय उसे मुक्त करने का अधिकार देने के लिए पर्याप्त परिहार अर्जित नहीं किया था, और इसलिए इसे सही रुप से खारिज कर दिया गया था, लेकिन ऐसा कहते हुए, इसका श्रीमान द्वारा यह अर्थ नहीं लिया जाना चाहिए कि सभी मामलों में आजीवन कारावास की सजा को बीस साल से अधिक की सजा के रूप में नहीं माना जाना चाहिए, या कि दोषी आवश्यक रूप से परिहार का हकदार है। भारतीय दंड संहिता की धारा 57 का हमारे सामने उठाए गए प्रश्न पर कोई वास्तविक संबंध नहीं है। दण्डावधियों की भिन्नों की गणना के लिए धारा में प्रावधान

है कि जीवन निर्वासन को बीस साल के कारावास के बराबर माना जाएगा। इसमें यह नहीं कहा गया है कि जीवन निर्वासन को सभी उद्देश्यों के लिए बीस वर्षों के लिए निर्वासन माना जाएगा; न ही संशोधित धारा जो "जीवन निर्वासन" के स्थान पर "जीवन के लिए कारावास" शब्दों को प्रतिस्थापित करती है, ऐसी किसी सर्वव्यापी कल्पना को चित्रित करने में सक्षम बनाती है।आजीवन कारावास या आजीवन कारावास की सजा को प्रथम दृष्टया दोषी व्यक्ति के प्राकृतिक जीवन की शेष अवधि के लिए निर्वासन या कारावास के रूप में माना जाना चाहिए।

7. यह सामान्य मामला है कि उक्त नियम जेल अधिनियम, 1894 के तहत बनाए गए थे और उनके पास वैधानिक बल है। लेकिन जेल अधिनियम किसी प्राधिकारी को सज़ा कम करने या परिहार करने की शक्ति प्रदान नहीं करता है; यह केवल जेलों के विनियमन और उनमें बंद कैदियों के उपचार के लिए प्रावधान करता है। जेल अधिनियम की धारा 59 राज्य सरकार को अन्य बातों के साथ-साथ अच्छे आचरण के लिए पुरस्कार के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है। इसलिए अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों को अधिनियम के दायरे में ही समझा जाना चाहिए। नियम,

अन्य बातों के अलावा, पुरस्कार के माध्यम से तीन प्रकार की परिहार प्रदान करते हैं, अर्थात्, (i) सामान्य रूप से, (ii) विशेष और (iii) राज्य. उक्त परिहार पर कार्य करने के लिए, नियम 1419(सी) के तहत, जीवन निर्वासन को आम तौर पर 15 साल की वास्तविक कारावास के रूप में लिया जाना चाहिए। इस नियम को आजीवन निर्वासन के लिए 15 साल की वास्तविक कारावास के वैधानिक समीकरण के रूप में नहीं समझा जा सकता है। समीकरण केवल एक विशेष उद्देश्य के लिए है, अर्थात् "परिहार प्रणाली" के उद्देश्य के लिए, न कि सभी उद्देश्यों के लिए। नियम में "सामान्यतः" शब्द भी उक्त मूल भावना का समर्थन करता है। तथापि नियम 1447 के उप-नियम (2) इस बात को दोहराता है कि नियम 1419 में किसी भी बात के बावजूद किसी भी कैदी को, जिसे आजीवन कारावास की सजा दी गई है, उसकी सजा पूरी होने पर तब तक रिहा नहीं किया जाएगा, जब तक कि सरकार का आदेश इसको प्रस्तुत रिपोर्ट पर प्राप्त न हो जाए। इससे यह भी पता चलता है कि नियम में निर्दिष्ट 15 साल की वास्तविक कारावास की अवधि केवल परिहार की गणना के उद्देश्य से है और उस आधार पर अवधि पूरी होने से कैदी को रिहाई का कोई अधिकार नहीं मिलता है।

आजीवन कारावास की सजा पाए कैदी के मामले में नियम 1447 में विचारित सरकार का आदेश केवल दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 के तहत एक आदेश हो सकता है, क्योंकि आजीवन कारावास की सजा के मामले में कैदी की रिहाई कैदी को कानूनी तौर पर बकाया पूरी सजा माफ करके ही प्रभावी की जा सकती है। नियम 934 और 937(सी) उस आकस्मिकता का प्रावधान करते हैं। उक्त नियमों के तहत धारा 401 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत उपयुक्त सरकार के आदेश, रिहाई के लिए एक पूर्व-आवश्यकता हैं। हमारे ध्यान में कोई अन्य नियम नहीं लाया गया है जो आजीवन निर्वासन की सजा पाए कैदी को परिहार सहित किसी विशेष अवधि की समाप्ति पर बिना शर्त रिहाई का अपरिहार्य अधिकार प्रदान करता हो। जेल अधिनियम के तहत नियम आजीवन कारावास की सजा के स्थान पर कम सजा का विकल्प नहीं देते है।

8. संक्षेप में कानूनी स्थिति इस प्रकार है: 1955 के अधिनियम 26 से पहले एक कैदी को भारत में निर्दिष्ट जेल में आजीवन कठोर कारावास के माध्यम से आजीवन निर्वासन की सजा भुगतनी पड़ सकती थी। उक्त अधिनियम के बाद, ऐसे दोषी के साथ उसी तरह व्यवहार किया जाएगा,

जैसे उसी अवधि के लिए कठोर कारावास की सजा पाने वाले के साथ किया जाएगा। जब तक भारतीय दंड संहिता या आपराधिक प्रक्रिया संहिता के प्रासंगिक प्रावधानों के तहत उपयुक्त प्राधिकारी द्वारा उक्त सजा को कम या माफ नहीं किया जाता है, तब तक आजीवन कारावास की सजा पाने वाला कैदी जेल में आजीवन कारावास की सजा काटने के लिए कानूनन बाध्य है। जेल अधिनियम के तहत बनाए गए नियम ऐसे कैदी को सामान्य, विशेष और राज्य जैसी परिहार अर्जित करने में सक्षम बनाते हैं और उक्त परिहार को उसके कारावास की अवधि में शामिल किया जाएगा। परिहार पर कार्य करने के उद्देश्य से जीवन निर्वासन की सजा को आम तौर पर एक निश्चित अवधि के बराबर माना जाता है।, लेकिन यह केवल उस विशेष उद्देश्य के लिए है, किसी अन्य उद्देश्य के लिए नहीं। चूंकि आजीवन निर्वासन या इसके समकक्ष जेल की सजा, आजीवन कारावास, अनिश्चित अवधि की होती है, इसलिए अर्जित परिहार व्यवहार में ऐसे दोषी की मदद नहीं करती है क्योंकि उसकी मृत्यु के समय की भविष्यवाणी करना संभव नहीं है। यही कारण है कि नियम एक ऐसी प्रक्रिया प्रदान करते हैं जिससे उपयुक्त सरकार दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 के तहत

प्रासंगिक कारकों पर विचार करने के बाद सजा माफ कर सके, जिसमें अर्जित परिहार की अवधि भी शामिल है।

परिहार का प्रश्न विशेष रूप से उपयुक्त सरकार के अधिकारिता के भीतर है; और इस मामले में यह स्वीकार किया गया है कि, हालांकि उपयुक्त सरकार ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 के तहत कुछ परिहार दिया है, लेकिन उसने पूरी सजा में छुट नहीं दी है। इसलिए, हम मानते हैं कि याचिकाकर्ता ने अभी तक रिहाई का कोई अधिकार हासिल नहीं किया है।" उपरोक्त निर्णय से, यह स्पष्ट है कि आईपीसी की धारा 57 या आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1973 के किसी अन्य प्रावधान के आधार पर सक्षम सरकार द्वारा परिहार के बाद के आदेश के अभाव में, आजीवन कारावास की सजा काट रहे दोषी को रिहा नहीं किया जा सकता है। संविधान पीठ के उपरोक्त निर्णय का अनुसरण बाद के विभिन्न निर्णयों में किया गया है।"

12. मध्य प्रदेश राज्य बनाम रतन सिंह और अन्य, (1976) 3 एससीसी 470 में, गोपाल विनायक गोडसे के प्रकरण (पूर्व) में संविधान पीठ के निर्णय को अनुसरित करते हुए इस न्यायालय ने निम्नानुसार कहा:

"4. जहां तक पहले बिंदु का संबंध है, अर्थात् पंजाब जेल मैनुअल या जेल अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों के तहत 20 साल की समाप्ति पर कैदी को स्वचालित रूप से रिहा किया जा सकता है यह बिन्दु गोपाल विनायक गोडसे बनाम महाराट्र राज्य के निर्णय द्वारा अंतिम हो चुका है जहा प्रीवी काउसल द्वारा पारित निर्णय पंडित कोशीरी लाल बनाम किंग एमप्रर ए आई आर 1945 पीसी 64 का अनुसरण करते हुए न्यायालय द्वारा निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया" , उक्त धारा के अधिनियमन से पहले आजीवन कारावास या किसी अन्य अवधि के लिए जेल भेजे गए व्यक्ति को आजीवन या उक्त अवधि के लिए कठोर कारावास की सजा पाने वाले व्यक्ति के रूप में माना जाएगा।

यदि ऐसा है, तो अगला प्रश्न यह है कि क्या कानून का कोई प्रावधान है जिसके तहत उचित सरकार द्वारा बिना किसी औपचारिक परिहार के आजीवन कारावास की सजा को स्वचालित रूप से एक निश्चित अवधि के लिए एक सजा के रूप में माना जा सकता है। ऐसा कोई प्रावधान भारतीय दंड संहिता दंड प्रक्रिया संहिता या जेल अधिनियम में नहीं पाया जाता है।

आजीवन कारावास या आजीवन कारावास की सजा को प्रथम दृष्टया दोषी व्यक्ति के प्राकृतिक जीवन की शेष अवधि के लिए निर्वासन या कारावास के रूप में माना जाना चाहिए। न्यायालय ने आगे इस प्रकार कहा:

> "लेकिन जेल अधिनियम किसी भी प्राधिकारी को सज़ा कम करने या छुट प्रदान करने की शक्ति प्रदान नहीं करता है; यह केवल जेलों के विनियमन और उनमें बंद कैदियों के उपचार के लिए प्रावधान करता है। जेल अधिनियम की धारा 59 राज्य सरकार को अन्य बातों के साथ-साथ अच्छे आचरण के लिए पुरस्कार के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है इसलिए, अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों को अधिनियम के दायरे में माना जाना चाहिए... उक्त नियमों के आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 401 के तहत उपयुक्त सरकार के आदेश, रिहाई के लिए एक पूर्ववर्ती शर्त हैं। हमारे ध्यान में कोई अन्य नियम नहीं लाया गया है जो आजीवन कारावास की सजा पाए कैदी को परिहार सहित किसी विशेष अवधि की समाप्ति पर बिना शर्त रिहाई का अपरिहार्य अधिकार प्रदान करता हो। जेल अधिनियम के तहत आजीवन कारावास की सजा के विकल्प के तौर पर सुक्ष्म सजा दिये जाने का कोई प्रावधान नहीं है। परिहार का

प्रश्न विशेष रूप से उपयुक्त सरकार के अधिकारिता के भीतर है; और इस मामले में यह स्वीकार किया गया है कि, हालांकि उपयुक्त सरकार ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 के तहत कुछ परिहार दी है, लेकिन उसने पूरी सजा नहीं हटाई है। इसलिए, हम मानते हैं कि याचिकाकर्ता ने अभी तक रिहाई का कोई अधिकार हासिल नहीं किया है।"

इसलिए, इस न्यायालय के निर्णय से यह स्पष्ट है कि जेल अधिनियम या जेल मैनुअल के तहत बनाए गए नियम कैदी द्वारा सजा भुगतने की कुल अवधि को प्रभावित नहीं करते हैं, बल्कि दी जाने वाली विभिन्न छूटों के संबंध में केवल प्रशासनिक निर्देश कैदी को समय-समय पर नियमानुसार प्रदत्त है। इस न्यायालय ने आगे बताया कि पूरी सजा या उसके एक हिस्से की माफी का सवाल आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 401 के तहत उपयुक्त सरकार के विशेष क्षेत्र में आता है और न ही भारतीय दंड संहिता की धारा 57 और न ही कोई नियम या स्थानीय अधिनियम भारतीय दंड संहिता के तहत अदालत द्वारा दी गई आजीवन कारावास की सजा के प्रभाव को कुंद कर सकते हैं. दूसरे शब्दों में, इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि आजीवन कारावास की सजा आरोपी के

जीवनकाल तक रहेगी क्योंकि कैदी की मृत्यु की एक विशेष अवधि तय करना संभव नहीं है और नियमों के तहत दी गई परिहार को विकल्प के रूप में नहीं माना जा सकता है। इसी लिए इन परिस्थितियो में उच्च न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में सही नहीं था कि आजीवन निर्वासन की सजा के लिए प्रत्यर्थी परिहार सहित 20 साल की अवधि पूरी करने पर रिहा होने का अधिकारी था। इसलिए, इन कारणो से अपीलकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया प्रथम तर्क सुस्थिापित एवं प्रभावी है।

9. प्राधिकरण और दंड प्रक्रिया संहिता के वैधानिक प्रावधानों की समीक्षा से निम्नलिखित प्रस्ताव सामने आते हैं:

"(1) कि आजीवन कारावास की सजा परिहार सहित 20 साल के अंत में स्वचालित रूप से समाप्त नहीं होती है, क्योंकि विभिन्न जेल मैनुअल या जेल अधिनियम के तहत बनाए गए प्रशासनिक नियम भारतीय दंड संहिता के वैधानिक प्रावधानों का स्थान नहीं ले सकते हैं।.आजीवन कारावास की सजा का मतलब कैदी के पूरे जीवन की सजा है, जब तक कि उपयुक्त सरकार दंड प्रक्रिया संहिता की धारा

401 के तहत पूरी सजा या आंशिक सजा माफ करने के लिए अपने विवेक का प्रयोग नहीं करती;

(2) कि उपयुक्त सरकार के पास निस्संदेह सजा माफ करने या माफ करने से इनकार करने का विवेकाधिकार है और जहां वह सजा माफ करने से इनकार करती है, वहां राज्य सरकार को कैदी को रिहा करने का निर्देश देने के लिए कोई रिट जारी नहीं की जा सकती है;

(3) कि उचित सरकार जिसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 के तहत परिहार देने का अधिकार है, वह उस राज्य की सरकार [पिक] है जहां कैदी को दोषी ठहराया गया है और सजा सुनाई गई है, यानी स्थानांतरणकर्ता राज्य है, न कि स्थानांतरिति राज्य जहां कैदी को उसके अनुरोध पर कैदी स्थानांतरण अधिनियम के तहत स्थानांतरित किया गया हो ;और (4) जहां स्थानांतरित राज्य को लगता है कि आरोपी ने 20 साल की अवधि पूरी कर ली है, तो उसे केवल कैदी के अनुरोध को संबंधित राज्य सरकार को अग्रेषित करना होगा, यानी उस राज्य की सरकार को जहां कैदी था दोषी ठहराया गया और सजा सुनाई गई और भले ही यह अनुरोध राज्य सरकार द्वारा खारिज कर दिया गया

हो, सरकार के आदेश में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। ऐसा मानने के बाद, इस न्यायालय ने कैदी को सेंट्रल जेल, अमृतसर से रिहा करने के उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द कर दिया।"

13. करतार सिंह एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य, (1982) 3 एससीसी 1 में, इसी तरह के दावे पर विचार करते हुए इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की एक पीठ ने इस प्रकार निर्धारित किया:

"6... इसके अलावा, आईपीसी की धारा 57 या जेल मैनुअल में निहित परिहार नियम (उदाहरण के लिए पंजाब/हरियाणा जेल मैनुअल का पैरा 516-बी) इस संदर्भ में अप्रासंगिक हैं।धारा 57 आईपीसी में प्रावधान है कि आजीवन कारावास को उसमें उल्लिखित विशिष्ट उद्देश्य के लिए 20 साल के कारावास के बराबर माना जाएगा, अर्थात्, सजा की शर्तों के अंशों की गणना के उद्देश्य से और सभी उद्देश्यों के लिए नहीं;

इसी प्रकार जेल मैनुअल में निहित परिहार नियम दंड संहिता में निहित वैधानिक प्रावधानों का अधिरोहण नहीं कर सकते हैं और आजीवन कारावास की सजा को दोषी के शेष प्राकृतिक जीवन की सजा के रूप में माना जाना चाहिए।

पंडित किशोरी लाल मामले में प्रिवी काउंसिल और गोपाल गोडसे मामले में इस न्यायालय ने यह विचार करके इस स्थिति को हमेशा के लिए तय कर दिया है कि आजीवन कारावास या आजीवन कारावास की सजा को दोषी व्यक्ति के प्राकृतिक जीवन की शेष अवधि के लिए आजीवन कारावास के रुप में माना जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण की पुष्टि इस न्यायालय द्वारा बाद के दो निर्णयों रतन सिंह और मारू राम मामले में की गई है इस मामले में आजीवन कारावास की सजा पाने वाले दोषी सीआरपीसी की धारा 428 के दायरे में नहीं आएंगे। पीठ ने गोपाल गोडसे मामले (पूर्व) और पंडित किशोरी लाल बनाम किंग एमप्ररर, एआईआर 1945 पीसी 64 में प्रिवी काउंसिल के निर्णय पर भी विचार किया।"

14. लक्ष्मण नस्कर बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2000) 2 एससीसी 595 में, इस न्यायालय ने वही प्रस्ताव दोहराया।

15. अंतिम निर्णय जो सीधे तौर पर मौजूदा मामले के समान बिंदु पर है, वह है मोहम्मद मुन्ना बनाम भारत संघ एवं अन्य इत्यादी (2005) 7 एससीसी 417। उक्त मामला संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत दायर एक रिट याचिका में सामने आया याचिकाकर्ता के अनुसार, आजीवन कारावास की अवधि 20 साल के कारावास के बराबर है और वह भी कानून

के तहत स्वीकार्य आगे की परिहार के अधीन है। आगे बताया गया कि इस अवधि के पूरा होने पर, वह पश्चिम बंगाल जेल संहिता के नियम 751 (सी) के तहत रिहा होने के लिए अधिकारी था। याचिकाकर्ता ने पश्चिम बंगाल सुधार सेवा अधिनियम, 1992 (पश्चिम बंगाल अधिनियम 32, 1992) की धारा 61 के स्पष्टीकरण का आधार लिया, जिसके तहत आजीवन कारावास 20 साल के कारावास की अवधि के बराबर है। जैसा कि पहले कहा गया है, यह मौजूदा मामले के समान ही मामला है। यहां फिर से, पश्चिम बंगाल अधिनियम की धारा 61 का स्पष्टीकरण ध्यान में लाया गया था। उन्हीं प्रावधानों पर गौर करने और पंडित किशोरी लाल के मामले (पूर्व) में प्रिवी काउंसिल के फैसले के साथ-साथ गोपाल विनायक गोडसे के मामले (पूर्व) में संविधान पीठ के निर्णय पर विचार करने के बाद, इस न्यायालय ने इस प्रकार निष्कर्ष निकाला:

> "13. अधिवक्ता ने तर्क दिया कि पश्चिम बंगाल जेल संहिता के नियम 751 (सी) के आधार पर, याचिकाकर्ता बीस साल पूरे होने पर जेल से रिहा होने के लिए अधिकारी था। उन्होंने पश्चिम बंगाल सुधार सेवा अधिनियम, 1992 (डब्ल्यूबी अधिनियम 32, 1992) की धारा 61 के स्पष्टीकरण का भी आधार लिया। जिसमें परिहार प्राप्ति हेतु आजीवन कारावास को बीस साल के साधारण कारावास की अवधि के बराबार किया गया है। लेकिन भारतीय दंड संहिता

या आपराधिक प्रक्रिया संहिता में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिसके तहत उपयुक्त सरकार द्वारा औपचारिक परिहार के बिना आजीवन कारावास को चौदह साल या बीस साल के रूप में माना जा सके। दंड संहिता की धारा 57 इस प्रकार है:

"57.दण्डावधियों की भिन्नें - दण्डावधियों की भिन्नों की गणना करने में, आजीवन (कारावास) को 20 वर्ष के (कारावास) के तुल्य गिना जाएगा। उपरोक्त धारा परिहार के उद्देश्य से तब लागू होती है जब सरकार द्वारा उचित प्रावधानों के तहत मामले पर विचार किया जाता है। यही दलील किशोरी लाल बनाम सम्राट 5 में प्रिवी काउंसिल की न्यायिक समिति के समक्ष रखी गई थी और प्रिवी काउंसिल ने इस प्रकार कहा था: (एआईआर पृष्ठ 67) "यह मानते हुए कि सजा 20 वर्ष की है व अच्छे आचरण के आधार पर परिहार के अध्यधीन है, उसने अपने आवेदन के समय उसे रिहाई पाने का अधिकार देने के लिए पर्याप्त परिहार अर्जित नहीं की थी और इसलिए इसे सही रुप से खारिज कर दिया गया था, लेकिन, यह कहने में, श्रीमान का अर्थ यह नहीं लिया जाना चाहिए कि आजीवन कारावास की सजा सभी

मामलों में 20 वर्ष से अधिक की सजा नहीं मानी जाएगी या दोषी आवश्यक रूप से परिहार का हकदार होगा।"

14. जेल नियम जेल अधिनियम के तहत बनाए जाते हैं और जेल अधिनियम अपने आप में सजा कम करने या छुट प्रदान करने का कोई अधिकार या शक्ति प्रदान नहीं करता है। यह केवल जेलों के विनियमन और उनमें बंद कैदियों के लिए शर्तों का प्रावधान करता है। इसलिए, पश्चिम बंगाल सुधार सेवा अधिनियम या पश्चिम बंगाल जेल संहिता यहां याचिकाकर्ता को कोई विशेष अधिकार प्रदान नहीं करती है।

15. गोडसे मामले6 में, इस न्यायालय की संविधान पीठ ने माना कि आजीवन कारावास की सजा किसी निश्चित अवधि के लिए नहीं है और आजीवन कारावास को, प्रथम दृष्टया, दोषी व्यक्ति के शेष पूरी अवधि के प्राकृतिक जीवन के लिए कारावास के रूप में माना जाना चाहिए। इसे एआईआर पैरा 5 में भी इस प्रकार रखा गया था: (एससीआर पृ. 444-45) "यह नहीं कहता कि आजीवन निर्वासन को सभी उद्देश्यों के लिए बीस वर्षों के लिए निर्वासन माना जाएगा; न ही संशोधित धारा जो आजीवन

निर्वासन' के स्थान पर 'जीवन के लिए कारावास' शब्द को प्रतिस्थापित करती है, ऐसी किसी भी सर्वव्यापी कल्पना को चित्रित करने में सक्षम बनाती है। आजीवन कारावास या आजीवन कारावास की सजा को प्रथम दृष्टया दोषी व्यक्ति के प्राकृतिक जीवन की शेष अवधि के लिए निर्वासन या कारावास के रूप में माना जाना चाहिए।

16. निर्णय को सारांशित करते हुए, इसे एआईआर पैरा 8 में निम्नानुसार निर्धारित किया गया: (एससीआर पृष्ठ 447) "संक्षेप में कानूनी स्थिति यह है: 1955 के अधिनियम 26 से पहले एक कैदी को आजीवन निर्वासन' की सजा भारत में निर्दिष्ट जेल में आजीवन कठोर कारावास की सज़ा दी जा सकती थी। उक्त अधिनियम के बाद, ऐसे दोषी के साथ उसी तरह व्यवहार किया जाएगा, जैसे उसी अवधि के लिए कठोर कारावास की सजा पाने वाले के साथ किया जाएगा। जब तक भारतीय दंड संहिता या आपराधिक प्रक्रिया संहिता के प्रासंगिक प्रावधानों के तहत उपयुक्त प्राधिकारी द्वारा उक्त सजा को कम या माफ नहीं किया जाता है, तब तक आजीवन कारावास की सजा पाने वाला कैदी जेल में आजीवन कारावास की सजा काटने के लिए कानूनन बाध्य है। जेल अधिनियम के तहत बनाए गए नियम ऐसे

कैदी को सामान्य, विशेष और राज्य जैसी परिहार अर्जित करने में सक्षम बनाते हैं और उक्त परिहार को उसके कारावास की अवधि में शामिल किया जाएगा। परिहार को पूरा करने के उद्देश्य से आजीवन निर्वासन' की सजा को आम तौर पर एक निश्चित अवधि के बराबर किया जाता है, लेकिन यह केवल उस विशेष उद्देश्य के लिए है, किसी अन्य उद्देश्य के लिए नहीं। चूंकि आजीवन कारावास या इसके समकक्ष कारावास की सजा, आजीवन कारावास, अनिश्चित अवधि की होती है, इसलिए अर्जित परिहार व्यवहार में ऐसे दोषी की मदद नहीं करती है ऐसा करना इसलिए संभव नहीं है क्योंकि उसके मृत्यु का समय निश्चित नहीं है। यही कारण है कि नियम एक ऐसी प्रक्रिया प्रदान करते हैं जिससे उपयुक्त सरकार दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 के तहत प्रासंगिक कारकों पर विचार करने के बाद सजा माफ कर सके, जिसमें अर्जित परिहार की अवधि भी शामिल है। परिहार का प्रश्न विशेष रूप से उपयुक्त सरकार के अधिकारिता के भीतर है; और इस मामले में यह स्वीकार किया गया है कि, हालांकि उपयुक्त सरकार ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 401 के तहत कुछ परिहार दी है, लेकिन उसने पूरी सजा नहीं हटाई है। इसलिए, हम मानते हैं कि

याचिकाकर्ता ने अभी तक रिहाई का कोई अधिकार हासिल नहीं किया है।" हम संविधान पीठ द्वारा निर्धारित उपरोक्त आदेश से बंधे हैं और हमारा मानना है कि आजीवन कारावास चौदह साल या बीस साल की कैद के बराबर नहीं है, जैसा कि याचिकाकर्ता ने तर्क दिया है।

17. इस प्रकार, याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए सभी तर्क विफल हो जाते हैं और याचिकाकर्ता रिट याचिका में आग्रह किए गए किसी भी आधार पर रिहा होने का हकदार नहीं है, जब तक कि उपयुक्त सरकार द्वारा उसके पक्ष में परिहार का कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है।हम यह स्पष्ट करते हैं कि हमारे निर्णय को हमारे विचार की अभिव्यक्ति के रूप में लेने की आवश्यकता नहीं है कि याचिकाकर्ता किसी भी परिहार का हकदार नहीं है। उपयुक्त सरकार कानून के अनुसार परिहार का कोई भी उचित आदेश पारित करने के लिए स्वतंत्र होगी।"

16. यह स्पष्ट है कि न तो आईपीसी की धारा 57 और न ही डब्ल्यूबी अधिनियम की धारा 61 का स्पष्टीकरण यह बताता है कि आजीवन कारावास वाले कैदी को 20 साल पूरे होने के बाद रिहा किया जाना चाहिए। डब्ल्यूबी अधिनियम की धारा 61 के स्पष्टीकरण में उल्लिखित 20 वर्ष

केवल परिहार का आदेश देने के उद्देश्य से है। यदि राज्य सरकार ने विभिन्न पहलुओं पर विचार करते हुए पूरी अवधि की परिहार देने से इनकार कर दिया है तो याचिकाकर्ता उपरोक्त स्पष्टीकरण और यहां तक आईपीसी की धारा 57 का लाभ नहीं उठा सकता है और समय से पहले रिहाई की मांग नहीं कर सकता है। इसके अलावा पूरी सजा या उसके एक हिस्से की माफी का प्रशन आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 401 के तहत उपयुक्त सरकार के विशेष क्षेत्राधिकार मे आता है एवं ना तो आईपीसी की धारा 57 और ना ही किसी अन्य नियम या स्थानिय अधिनियम द्वारा आईपीसी के तहत न्यायालय द्वारा पारित की गई आजीवन कारावास के दण्ड के प्रभाव धूमिल कर सकता है इसे स्पष्ट करने के लिए, एक बार जब किसी व्यक्ति को आजीवन कारावास की सजा सुनाई जाती है, जब तक कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा आजीवन कारावास को कम नहीं किया जाता है, उसे अपने पूरे जीवन के लिए कारावास भुगतना पड़ता है। यह भी समान रूप से स्थापित है कि आईपीसी की धारा 57 किसी भी तरह से आजीवन कारावास की सजा को 20 साल तक सीमित नहीं करती है।

17. हस्तगत प्रकरण में प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने इस बात पर प्रकाश डाला कि पश्चिम बंगाल में आजीवन कारावास की सजा काट रहे कैदियों की समयपूर्व रिहाई के आवेदनों पर विचार करने के लिए एक विधिवत गठित समीक्षा बोर्ड है। जो निम्न प्रकार से गठित है:

1. अतिरिक्त मुख्य सचिव, गृह विभाग -समीक्षा बोर्ड के अध्यक्ष;

2. पुलिस आयुक्त, कोलकाता - सदस्य

3. मुख्य परिवीक्षा अधिकारी, पश्चिम बंगाल -सदस्य

4. कारागार महानिरीक्षक, पश्चिम बंगाल -सदस्य

5. न्यायिक सचिव, पश्चिम बंगाल -संयोजक

6. महानिदेशक एवं पुलिस महानिरीक्षक, पश्चिम बंगाल -सदस्य

7. प्रमुख सचिव, जेल विभाग, पश्चिम बंगाल -सदस्य

संविधान के अनुच्छेद 161 के तहत समय से पहले रिहाई के लिए आवेदन प्राप्त होने पर, समीक्षा बोर्ड सभी विवरणों पर गौर करेगा और इसे सरकार के समक्ष रखेगा।अंततः माननीय मुख्यमंत्री के अनुमोदन पर, अपराधी को आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 432 के तहत समय से पहले रिहा कर दिया जाता है। जहां तक अनुच्छेद 161 के तहत आवेदन का संबंध है, यह स्पष्ट किया गया कि अपनाई जाने वाली प्रक्रिया वही है किन्तु पत्रावली को अंतत माननीय मुख्य मंत्री के माध्यम से राज्य के माहामहिम राज्यपाल के समक्ष रखा जाता है।

18. राज्य द्वारा दायर जवाबी हलफनामे में, यह बताया गया है कि याचिकाकर्ता -खोका @ प्रशांत सेन के मामले के संबंध में, सजा समीक्षा बोर्ड ने निम्नानुसार पाया:

"आजीवन दोषी को 18.01.1990 को आईपीसी की धारा 302/34 के तहत 18.01.1990 को दोषी ठहराया गया था और जून 1989 के एसटी नंबर 01 के संबंध में हिरासत में लिया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रिट पिटिशन (क्रिमिनल) संख्या 279/2004 में पारित आदेश के अनुसरण में उसे 29.04.2005 को प्रेसिडेंसी सुधार गृह से पेरोल पर रिहा किया गया था। पुलिस प्राधिकरण ने निम्नलिखित आधारों पर आजीवन कारावास की सजा पाए दोषी की समयपूर्व रिहाई का पुरजोर विरोध किया:

दोषी ठहराए जाने से पहले वह क्षेत्र में एक कुख्यात व्यक्ति था। वह अभी भी अपने पुराने सहयोगियों के साथ संबंध बनाए रखता है। वह 52 वर्ष की आयु के भीतर अच्छे स्वास्थ्य के साथ है। उसकी सामाजिक आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। उसकी समय से पहले रिहाई की स्थिति में उसके फिर से अपराध की ओर लौटने की पूरी संभावना है। अपने पैरोल के दौरान वह तकनीकी रूप से आजीवन कारावास की सजा काट रहा है और उसे फिलहाल आपराधिक गतिविधियों से दूर रहने के लिए बाध्य किया गया है। उसके और भी अपराध करने की पूरी संभावना है.

उपरोक्त तथ्य पर विचार करते हुए, समीक्षा बोर्ड को पैरोल पर आजीवन कारावास की सजा काट रहे कैदी की समयपूर्व रिहाई की सिफारिश करने का कोई कारण नहीं मिला"

पहलुओं पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद, समीक्षा बोर्ड ने 27.01.2011 को हुई अपनी बैठक में याचिकाकर्ता को उसकी समयपूर्व रिहाई की सिफारिश नहीं की। समीक्षा बोर्ड की अनुशंसा को राज्य सरकार के समक्ष रखा गया और राज्य सरकार ने राज्य सजा समीक्षा बोर्ड की अनुशंसा को स्वीकार कर लिया. राज्य सरकार के निर्णय की सूचना याचिकाकर्ता को पत्र संख्या 790-जे दिनांक 09.02.2012 के माध्यम से दी गई।

19. राज्य सजा समीक्षा बोर्ड के निर्णय, राज्य सरकार द्वारा अनुमोदन और गोपाल विनायक गोडसे के मामले (पूर्व) में संविधान पीठ के निर्णय सहित इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में प्रतिपादित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, हमें इस अवमानना याचिका में कोई योग्यता नहीं मिलती है। अतः अवमानना याचिका खारिज की जाती है।

अपील निरस्त।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल "सुवास" की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी नमिता ढ़ाड वसिसठ आर.जे.एस. द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझााने के सीमत उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक एवं आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा और निष्पादन व कार्यान्यवन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।